JETIR.ORG ISSN: 2349-5162 | ESTD Year : 2014 | Monthly Issue
JOURNAL OF EMERGING TECHNOLOGIES AND INNOVATIVE RESEARCH (JETIR)
An International Scholarly Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

'व्यक्तित्व विकास की प्रक्रिया में प्रज्ञायोग साधना का महत्व – एक अध्ययन'

षोधार्थी– नन्दकिषोर (दर्षनषास्त्र)
प्राच्य अध्ययन विभाग, दे. सं. वि. वि., हरिद्वार
निर्देषिका– डॉ. षषिकला साहू
असिस्टेंट प्रोफेसर, देव संस्कृति विष्वविद्यालय, षांतिकुंज, हरिद्वार

सारांष–

जीवन की प्रसुप्त षक्तियाँ भीतर से ही जगती–उभरती हैं। उनके उफनने पर उसी तरह की प्रवाहधारा बहने लगती है, जैसे कि यमुना, नर्मदा आदि कुण्डों से निकलकर भू–तल पर प्रवाहित होती हैं। जीवन–साधना का यह सिद्धान्त षाष्वत सत्य की तरह स्पश्ट है। उसमें न सन्देह की गुन्जाइष है, न विवाद की। प्रज्ञायोग के तत्वदर्षन एवं उसकी समर्थ साधना से लाखों लोग चिरपरिचित हैं। यदि उसे पात्रता का, समर्थता का, व्यक्तित्व के परिश्कार की प्रक्रिया माना जाए और उस महाप्रयास में निरत हुआ जाए, तो ऐतिहासिक एवं विद्यमान अध्यात्मवादियों की तरह हर कोई अपने स्तर को क्रमषः अधिकाधिक ऊँचा जिसकी गरिमा को हिमालय से कम नहीं वरन् अधिक ही उत्तुंग, समुन्नत एवं समृद्ध कहा जा सके। इन दिनों लोकसेवा के लिए जिन उत्कृश्ट व्यक्तित्वों की भारी आवष्यकता है, उनका निर्माण प्रज्ञायोग रूपी जीवन–साधना से सहज सम्भव है। आचार्य जी के अनुसार– जीवन–साधना के हवनकुण्ड में अपनी आहुति देकर ही स्वयं के व्यक्तित्व में निहित अनन्त षक्तियों का जागरण सम्भव है।[1]

(1) प्रज्ञायोग की आवष्यकता–

विज्ञान ने बड़ी तेजी से उन्नति की है। बुद्धिवाद और प्रत्यक्षवाद ने मनुश्य की जीवनषैली की अमर्यादित उपयोग की साधन सुविधाएँ प्रदान की। उपलब्धियों का लेखा–जोखा भयावह चित्रण करता है। हर ओर बेचैनी, व्याधियाँ और उद्विग्नता दिखाई देती है। आज के मनुश्य का जीवन अव्यवस्थित हो गया है। आचार्य जी के अनुसार– ''कोलाहल, प्रदूशण, गन्दगी, बीमारियाँ आदि विपत्तियों से घिरा हुआ मनुश्य दिनोंदिन जीवनीषक्ति खोता चला जाता है। षारीरिक और मानसिक व्याधियाँ उसे जर्जर किए दे रही हैं। दुर्बलता जन्य कुरूपता को छिपाने के लिए सज–धज ही एकमात्र उपाय दीखता है। षरीर और मन की विकृतियों को छिपाने के लिए बढ़ते श्रृंगार की आंधी, आदमी को विलासी, आलसी, अपव्ययी और अहंकारी बनाकर नये किस्म का संकट खड़ा कर रही है।''[2]

प्रगति और उन्नति के पीछे व्यक्ति का षारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य असन्तुलित होने की स्थिति चित्रण करते हुये वे लिखते हैं– ''चमकीले आवरणों का छद्म उघाड़ कर देखा जाए तो प्रतीत होता है, कि इन षताब्दियों में मनुश्य ने जो पाया है, उसकी तुलना में खोया कहीं अधिक है। सुविधाएँ तो निःसन्देह बढ़ती जाती है, पर उसके बदले जीवनीषक्ति से लेकर षालीनता तक का क्षरण, अपहरण बुरी तरह हुआ

है।''[3] वस्तुतः आधुनिक जीवनषैली की अन्धी दौड़ ने व्यक्ति को इतना उलझा दिया है कि उसका जीवन अस्त–व्यस्त हो गया। मनुश्य की अपनी स्थिति एवं महत्व के अनुसार चिन्तन करते हैं तो पाते हैं कि परिस्थितियाँ, इतिहास क्रम और काल प्रवाह भी इस पर प्रभाव डालते हैं।[4] मानवीय सभ्यता, संस्कृति, धर्म, नैतिकता, राजनीति एवं आर्थिक स्थिति के सन्दर्भ में देखे तो सब प्रथमतः अपनी विचारधाराओं पर बल देते हैं। नास्तिक भौतिक कल्याण को, मार्क्स समस्याओं के मूल में अर्थ को महत्व देते हैं।[5] समस्त मध्यकाल में मूल्यों का स्रोत और नियन्ता किसी मानवो परिअलौकिक सत्ता को माना जाता था, और मनुश्य के जीवन की एकमात्र सार्थकता यही हुआ करती थी कि वह अधिक से अधिक उस सत्ता से तादात्म्य स्थापित करने की चेश्टा करे।[6] इस मान्यता में यदि एक व्यक्ति ईष्वर का सच्चा ज्ञान प्राप्त करने में समर्थ हो जाता है, तो उसे यह ज्ञान होता है कि ईष्वर उससे क्या चाहता है या उसकी श्रेश्ठता किसमें हैं।[7]

यहाँ एक प्रष्न पैदा होता है कि बिना स्वयं को समझे ईष्वर की अलौकिक सत्ता को समझना आसान नहीं है। व्यावहारिक जीवन में मनुश्य को सर्वप्रथम अपने को परखने की आवष्यकता पड़ती है, वह तभी उचित मूल्यांकन में दूसरों की सहायता कर सकता है।[8] समाज एवं मूल्यों का सेतु मनुश्य है और वही समस्त संस्कृतियों की षक्ति का स्रोत है, अतः उसका मूल्यांकन समाज, संस्कृति के आचरण के विकास के आधार पर ही होना चाहिये।[9] अस्तित्ववादी मानव को मूल्यांकन की दृश्टि से सर्वाधिक सौभाग्यषाली समझते हैं, उसके व्यक्तित्व का, समाज और सृश्टि, स्वभाव, चिन्तन और आदर्ष की दृश्टि से एक महत्वपूर्ण स्थान होता है।[10] इस तरह जीवनषैली के परिवर्तन एवं प्रगति के अनुरूप मानव समाज के स्वरूप तथा उसके माध्यम परिवर्तित होते चले गए। आधुनिक युग के साथ–साथ मानवोपरिसत्ता का अब मूल्य न होकर अस्तित्ववाद, व्यक्तिवाद, भौतिकवाद जैसे मूल्यांकनों का जन्म हुआ है। मनुश्य की गरिमा का नया उदय हुआ, यह माना जाने लगा कि मनुश्य स्वतः सार्थक मूल्यवान है। वह आन्तरिक षक्तियों से युक्त, चेतना स्तर पर अपना स्वयं निर्माण करने वाला प्राणी हैं।[11] आधुनिक युग में इसके साथ ही जहाँ एक ओर कुछ सिद्धान्तों पर आधारित मनुश्य की, सार्वभौमिक सत्ता की स्थापना हुई।[12] वही भौतिक स्तर पर भी ऐसी परिस्थितियाँ एवं अवस्थाएँ विकसित होती गयी, जिन्होंने मानव की सार्थकता, मूल्यवत्ता में अविष्वास कर मानव का अवमूल्यन किया। अपनी नियती के सूत्र सांस्कृतिक संकट से मनुश्य के हाथ से छूट गए और वह निरर्थकता की ओर बढ़ता गया।[13]

(2) प्रज्ञायोग से व्यक्तित्व विकास–

मनुष्य को अपनी इच्छाषक्ति एवं संकल्पषक्ति से कर्म की स्वतंत्रता प्राप्त है। इसलिए वह निष्चय ही अपने भाग्य का निर्माता कहा जा सकता है। अपने आचरण से वह देवमानव, मानव अथवा असुर, पिषाच हो सकता है। आचार्य जी मनुश्य में देवत्व को जगाने के लिए प्रयत्नषील हैं, अपनी आध्यात्मिक दृश्टि में उन्होंने इसे सर्वप्रथम रखा कि अन्तर्निहित देवत्व को जगाने, विकसित करने के लिए मानव को प्रेरित, उत्साहित किया जा सके। वे लिखते हैं– ''मनुश्य को सुनिष्चित रूप से अपने भाग्य का निर्माता कहा गया है, वह इसके लिए प्रबल, पुरूशार्थ करता है। अपने आपको अधिकाधिक पवित्र, प्रामाणिक एवं प्रतिभावान बनाता है। समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी और बहादुरी को अपने स्वभाव में सम्मिलित कर लेता है। अन्तःकरण और बाह्यचरण में जब समान रूप से उत्कृश्टता का समावेष हो तो सामान्य षरीर में रहते हुये भी व्यक्ति देवमानव की गरिमा उपलब्ध कर लेता है।[14] आइन्स्टीन के इस कथन पर सोचने के लिए बाध्य होना पड़ रहा है कि ''भौतिक चिन्तन अपनी कठिनाइयों को दार्षनिक चिन्तन के बिना दूर नहीं कर पायेगा।''[15] मनुश्य की दिव्यता को आधुनिक वैज्ञानिकों तथा अन्वेशणकर्त्ताओं ने भ्रान्ति धाराएँ प्रस्तुत की हैं। फ्रायडवादी प्रतिपादन के अनुसार आदर्षवादी की जड़ कट जाती है और मनुश्य नर–पषुओं की श्रेणी में खड़ा होता है। इन मान्यताओं से हटकर मानवीय स्वभाव की दिव्यता पर दृढ़ विष्वास रखने वाले

मनःषक्तियों एवं अध्यात्मवेत्ताओं का कहना है, कि मनुश्य ईष्वर की सर्वश्रेश्ठ सन्तान है। फ्रायड द्वारा प्रतिपादित स्वभाव को उन्होंने मनुश्य के वास्तविक स्वभाव का विकृत रूप बताया है। प्रख्यात मनोवैज्ञानिक कार्ल जुंग ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'टू एसे ऑन एनालिटीकल साइकोलॉजी' में कहा है कि मनुश्य स्वभावतः दिव्यता का पक्षधर है।[16] होमरलेन, प्लेटो, रूसो, स्पिनोजा, काण्ट एवं वाटसन माव की दिव्यता के पक्षधर रहे हैं। व्यक्तिगत जीवन में मानवता के इन खोये अस्तित्व को पुनः वापिस लौटाने के लिए आचार्य जी ने षाष्वत जीवन की पुनर्व्याख्या प्रस्तुत कर उनको जन मानस में स्थापित करने पर बल देते हैं। भारतीय विचारकों, तत्वदर्षियों, ऋशि–मुनियों की दृश्टि में व्यक्तित्व पूर्णरूपेण आध्यात्मिक है।

आचार्य पं. श्रीराम षर्मा के अनुसार– नीरस और निरर्थक जीवन एक ऐसा अभिषाप है, जिसे दुर्भाग्य के रूप में स्वीकार करना पड़ता है, किन्तु लगता यही रहता है कि बेकार जन्मे और निरर्थक जिए। असाधारण जीवन इससे आगे की बात है। सफल–समर्थ एवं समुन्नत स्तर के व्यक्ति सौभाग्यषाली नजर आते हैं और उनकी स्थिति प्राप्त करने के लिए मन ललचाता है। भौतिक सम्पन्नता से सम्पन्न और आत्मिक विभूतियों के धनी लोगों की न प्राचीनकाल में कमी थी और न अब है। पिछड़े और समुन्नत वर्गों के बीच अन्तर देखने से अचरज होता है कि एक जैसी काया में रहने वाले इनसानों की स्थिति में इतना ऊँचा या नीचा होने का क्या कारण हो सकता है। मनुश्य के बीच पाए जाने वाले आसमान–जमीन जैसे अन्तर का यही कारण नजर आता है कि जीवन की ऊपरी परतों तक ही जिन्होंने मतलब रखा, उन्हें छिलका ही हाथ लगा, किन्तु जिन्होंने गहरे उतरने की चेश्टा की, उन्हें एक के बाद एक बहुमूल्य उपलब्धियाँ मिलती चली गयीं। जीवन मनचाहा फल देने वाला कल्पतरू है। जो भी इसका जितना सदुपयोग कर सका, उतना ही वह धन्य हो जाता है। उसके होंठों पर सदा–सर्वदा मुसकराहट के फूल खिलते हैं। हमारी भूल इतनी ही रही कि न उसे खोजा गया और न काम में लाया गया। इस भूल का परिमार्जन आत्मज्ञान है। यह जाग्रति जब सक्रिय बनती है, तो आत्मोत्कर्श के लक्षण तत्काल दृश्टिगोचर होने लगते हैं। इसी आत्म–परिश्कार का नाम साधना है।[17]

(3) प्रज्ञायोग का स्वरूप–

प्रज्ञायोग दर्षन की सार्थकता का मानदण्ड उसका जन–जन तक पहुँचकर सभी में उत्थान एवं कल्याण की भावना उत्पन्न करना उनके जीवन के कृत्यों में परिवर्तन लाना रहा है। आचार्य जी ने इस जीवन दर्षन के चरितार्थ करने–कराने की दृश्टि से प्रज्ञा अभियान, युग निर्माण आन्दोलन का सूत्रपात कर इसके अन्तर्गत प्रज्ञायोग को व्यावहारिक धरातल पर प्रत्यक्ष करने वाली सैकड़ों गतिविधियों को तैयार कर संचालित किया है। प्रज्ञा अभियान के अन्तर्गत युग निर्माण के षतसूत्री कार्यक्रमों को प्रचारात्मक, रचनात्मक एवं सुधारात्मक संघर्शात्मक त्रिविध क्रिया पद्धति में बाँटा गया है। इतनी विराट योजना का भौतिक संसाधन आधार समयदान एवं अंषदान है स्वर्णिम एवं उज्जवल भविश्य के दृश्टा आचार्य जी सम्पूर्ण मानवता को आष्वस्त करते लिखते हैं– ''श्रेश्ठ मूल्यों की स्थापना के लिए क्रांतियाँ रेलगाड़ी के डिब्बों की भाँति एक के पीछे एक दौड़ती चली आ रही है। हर आँख वाला उनका द्रुतगति से पटरी पर दौड़ना प्रत्यक्ष देख सकता है।''[18]

आचार्य पं. श्रीराम षर्मा जी कहते है कि– कोई समय था जब परिवार के दायित्व स्वल्प थे। लोग लम्बे समय तक तप, योग, अनुश्ठान, स्वाध्याय जैसे प्रयोजनों में तत्परता और तन्मयता के साथ लम्बे समय तक लगे रहते थे। पर अब तो परिस्थितियाँ भिन्न हैं। सामयिक परिस्थितियों और आवष्यकताओं को देखते हुए सर्वसाधारण के लिए ऐसी क्रिया–प्रक्रिया का निर्धारण करना जरूरी है, जो सर्वसुलभ, समय के अनुरूप और पुरातन लक्ष्य की उपलब्धि करा सकने में समर्थ हों। यही ''प्रज्ञायोग'' है। प्रज्ञा अर्थात् दूरदर्षी विवेकषीलता, ऋतम्भरा प्रज्ञा। इसलिए इन दिनों उपासना का लक्ष्य 'प्रज्ञा' को बनाना ही है। योग कहते हैं

जोड़ने को वैयक्तिक अस्तित्व को उत्कृश्ट आदर्षवादिता को जोड़ने का तत्वदर्षन एवं व्यावहारिक स्वरूप है। प्रज्ञायोग को श्रद्धा और विवेक का, ज्ञान और कर्म का– मनुश्य और देव का समन्वय कह सकते हैं। यह कोई घटना नहीं। भावना क्षेत्र की एक विषिश्ट उपलब्धि है। उसे प्राप्त करने के लिए जो कृत्य करने पड़ते हैं उन्हें 'प्रज्ञायोग' कहा गया है। एकदिन को एक जन्म मानकर चिन्तन और कृत्यों में कुछ उच्चस्तरीय तत्वों का श्रेश्ठता का समावेष किये रहने की यह प्रक्रिया है।[19]

(4) प्रज्ञायोग के व्यावहारिक सूत्र–

आचार्य पं. श्रीराम षर्मा के अनुसार– प्रज्ञायोग की साधना ही जीवन साधना है जीवन साधना को व्यवहार में यदि न उतारा जाय तो, कथा, प्रवचनों को कहते–सुनते रहना भी कुछ कारगर न हो सकेगा। बात तभी बनेगी, जब उसे व्यवहार में उतारा जाए। इस व्यावहारिक (प्रज्ञायोग साधना) जीवन–साधना के चौदह स्वर्णिम सूत्र इस प्रकार है–

1. आस्तिकता (ईष्वरविष्वास)– यह मानवीय नैतिकता का मेरूदण्ड है। आस्तिकता का वातावरण हर घर में, हर मनुश्य के मन में बना रहें, इसके लिए सदा प्रयत्न करना चाहिए।
2. आध्यात्मिकता (आत्मविष्वास – आत्मनिश्ठा)– षिश्टता, सज्जनता, षालीनता, सहृदयता, चरित्रनिश्ठा, उदारता जैसी सत्प्रवृत्तियों से अन्तरात्मा को अलन्कृत करने के लिए अनवरत प्रयत्न किया जाए।
3. धार्मिकता (कर्त्तव्यनिश्ठा)– धर्म को प्रथा–परम्पराओं के बन्धन में न बाँधा जाए। उसे मानवीय कर्त्तव्य पालन के रूप में देखा – समझा जाए और सच्चे अर्थों में धार्मिक बना जाए।
4. प्रगतिषीलता (आत्मोत्कर्श)– रात्रि को सोते समय दिन भर के कार्यों की समीक्षा की जाए। जो सही हुआ हो, उस पर सन्तोश माना जाए और जो भूलें रही हों, उन्हें आगे न करने के लिए पूरा ध्यान रखने की बात सोची जाए।
5. संयमषीलता (इन्द्रियनिग्रह)– इन्द्रिय में स्वाद और कामुकता की विकृतियाँ ही प्रधान हैं। अन्य ज्ञानेन्द्रियों के उपद्रव तो थोड़े – से ही होते हैं और वे सहज सुधारे जा सकते हैं।
6. समस्वरता (मानसिक सन्तुलन)– मानसिक सन्तुलन का चिन्ह है प्रसन्नता व्यक्त करने वाली मुखाकृति और रचनात्मक चिन्तन करने वाला दूरदर्षी स्वभाव।
7. पारिवारिकता (आत्मविस्तार की प्रक्रिया)– श्रमषीलता, मितव्ययता, सहकारिता, षिश्टता एवं उदार आत्मीयता की सत्प्रवृत्तियाँ सीखने और बढ़ाने का अवसर घर के हर सदस्य को मिले। बड़ों को समुचित आदर और छोटों को भरपूर स्नेह–दुलार मिलना चाहिए। परिवार एक छोटा समाज एवं छोटा राश्ट्र है।
8. सामाजिकता (नागरिकता)– व्यक्तिवाद के प्रति उपेक्षा और समूहवाद के प्रति निश्ठा रखने वाले व्यक्तियों का समाज ही समुन्नत होता है और उसके सदस्य सुखी रह सकते हैं, यह तथ्य हर किसी को हृदयंगम करना और कराना चाहिए।
9. षालीनता (स्वच्छता एवं सादगी)– षरीर, वस्त्र, वस्तुएँ, उपकरण, घर आदि को स्वच्छ, सुव्यवस्थित देखकर यह पता चलता है कि आपने मानवीय सभ्यता के क्षेत्र में कितना प्रवेष पा लिया हे। ''षालीनता बिना मोल मिलती है परन्तु उससे सब कुछ खरीदा जा सकता है।''
10. नियमितता (समय और श्रम का सन्तुलन)– सोकर उठने से लेकर रात्रि को सोते समय तक की पूरी दिनचर्या हर रोज निर्धारित कर ली जाए और षक्ति भर यह प्रयत्न किया जाए कि हर कार्य समय पर पूरा होता रहे।

11. प्रामाणिकता (ईमानदारी–जिम्मेदारी)– धन सम्बन्धी ईमानदारी और कर्त्तव्य सम्बन्धी जिम्मेदारी का समन्वय किसी व्यक्ति को प्रामाणिकता एवं प्रतिश्ठित बनाता है।
12. विवेकषीलता (औचित्य को ही मान्यता)– अपने समाज में फैली हुई अवान्छनीय मान्यताओं के उन्मूलन का षक्ति भर प्रयत्न करना चाहिए।
13. परमार्थपरायणता (अंषदान)– हर मनुश्य के पास (1) समय (2) श्रम (3) बुद्धि (4) धन– ये चार सम्पदाएँ होती हैं। इनकों मात्र अपने ही स्वार्थ में न लगाकर परमार्थ–प्रयोजनों में भी लगाए।
14. प्रखरता (साहस एवं पराक्रम)– अपनी दुर्बलताओं को आत्मबल से समाप्त करना चाहिए। आदर्षों का पालन करने में एकाकी खड़े रह सकने की प्रखरता उत्पन्न करनी चाहिए।[20]

व्यक्तित्व विकास के ये महान सूत्र व्यावहारिक जीवन में उतारने वाला मनस्वी व्यक्ति ही सांसारिक एवं आत्मिक प्रयोजनों में सफल होते है। आचार्य पं. श्रीराम षर्मा ने अपनी अमृतवाणी में कहा है– दुनिया में सफलता एक चीज के बदले में मिलती है और वह है– आदमी का उत्कृश्ट व्यक्तित्व। इससे कम में कोई चीज नहीं मिल सकती। अगर कहीं से किसी ने घटिया व्यक्तित्व की कीमत पर किसी तरीके से अपने सिक्के को भुनाए बिना, अपनी योग्यता का सबूत दिए बिना, परिश्रम के बिना, गुणों के अभाव में, कोई चीज प्राप्त कर ली है तो वह उसके पास ठहरेगी नहीं।[21] अपने अन्दर सद्गुणों का विकास ही व्यक्तित्व का विकास है, आध्यात्मिक विकास है। व्यक्तित्व का स्वमूल्यांकन करने की दृश्टि से प्रत्येक मनुश्य को आचार्य श्री के अनुसार अपना मूल्यांकन करना चाहिए, जहाँ अपने अन्दर कमी दिखाई दे, उसे ठीक करने का प्रयास करना चाहिए। व्यक्तित्व के स्वमूल्यांकन की कसौटी के निम्न निर्देष है– श्रम के बाद विश्राम तो आवष्यक है, लेकिन बिना श्रम के विश्राम करना, आलस्य में समय बरबाद करना तो षरीर को बरबाद करना है, जीवन को बरबाद करना है। स्वच्छता, मुस्कारहट एवं मधुर व्यवहार सुन्दरता की कसौटी है। अपने लक्ष्य पर हमेषा ध्यान रहना चाहिए और उसके लिए निरन्तर प्रयास करते रहना चाहिए। मन की निर्मल और हृदय को दयालु बनाना चाहिए। स्वयं अपने, परिवार, समाज, देष, धर्म और संस्कृति के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन करते रहना चाहिए। अपनी विचारधारा और गतिविधियों को विवेक के अनुसार निर्धारित करना चाहिए। परिवार में व्यर्थ परम्पराओं को छोड़ देना चाहिए। अपने अन्दर के दोशों को ढूँढ़ना चाहिए। और इनको दूर करने के लिए स्वयं से संघर्श करना चाहिए। हमेषा मृदुभाशी बनें, मधुरता और आत्मीयता का व्यवहार करें। अपने दोश ढूँढ़ने, देखने और उन्हें दूर करने में इतने व्यस्त रहें कि दूसरों के दोश देखने के लिए समय ही न बचे। मर्यादाओं का पालन अवष्य करें। षरीर, वस्त्र, घर और वस्तुओं को स्वच्छ एवं सुव्यवस्थित रखने का अभ्यास करें। श्रम एक देवता है, श्रम से जी नहीं चुराना चाहिए। आहार सात्विक होना चाहिए। चटोरेपन की आदत छोड़नी चाहिए। सप्ताह में एक समय का उपवास, जल्दी सोने, सूर्योदय से पहले उठने की आदत डालनी चाहिए। देर से सोना अनेक रोगों का कारण है। ईष्वर उपासना, संतों की अमृतवाणी सुनना, पढ़ना एवं मनन करना, उन पर अमल करने का अभ्यास करना चाहिए। आय से कम में परिवार का खरच चलाएँ। बचत ही असली आय है। तम्बाकू, षराब, चाय, कॉफी, ताष, ज्यादा टी. वी. देखना, ये सब दुर्व्यसन हैं। इनसे बचना चाहिए। योगासन–प्राणायाम, ध्यान के लिए प्रतिदिन समय अवष्य निकालना चाहिए। षारीरिक–मानसिक स्वास्थ्य के उचित आहार–विहार, आचार–विचार एवं संयम का पालन करना चाहिए।[22] ये सभी बाते प्रज्ञायोग के क्रियात्मक पक्ष में सम्मिलित है।

निश्कर्श–

आचार्य पं. श्रीराम षर्मा ने लिखा है– हमारे आन्दोलन का लक्ष्य है– स्वस्थ षरीर, स्वच्छ मन, सभ्य समाज, आत्मनिर्माण, परिवार निर्माण, और समाज निर्माण, मानव में देवत्व एवं धरती पर स्वर्ग का अवतरण,

सद्बुद्धि और सत्कर्म की साधना, देव संस्कृति का उन्नयन और विकास, जनमानस का भावनात्मक परिश्कार, इसके लिए विचार–क्रांति, ज्ञानयज्ञ का सुनियोजन, जन–जन का साधनात्मक नियोजन, ताकि परिस्थितियाँ बदलें, समयदान और अंषदान की नियमितता, दीप से दीप जलाने की प्रक्रिया, राजनीति से दूर रहकर लोक–षिक्षण की प्रक्रिया को बलवती बनाना, संस्कार–परम्परा का पुनर्जीवन, षिक्षा और विद्या का सार्थक समन्वय। इन सबकी धुरी पर होगा युग का नवनिर्माण। यही सतयुग की वापसी कराएगा और इसी आधार पर भारत विष्व का जगद्गुरू पुनः बनेगा।[20] आचार्य जी के प्रज्ञायोग दर्षन के पीछे की मूल भावना भी यही है।

सन्दर्भ सूची–

1- पण्ड्या, डॉ. प्रणव(1998),जून, अखण्ड ज्योति, वर्श–61, अंक–06, पृ.–34

2- भारती, डॉ. धर्मवीर, मानव मूल्य और साहित्य, भूमिका पृश्ठ से

3- डॉ. देवराज, संस्कृति का दार्षनिक विवेचन, पृ.–151, 156

4- भारती, डॉ. धर्मवीर, मानव मूल्य और साहित्य, भूमिका पृश्ठ से

5- Floy H. Ross-The meaning of life in Hinduism and Buddism, P-154

6- Ibid, P-148

7- P.A. Schipp- The philosophy of Ernst Cassirer, P-462

8- Hanns E. Fischer (Ed.) Exitentialism and Humanism. P-8

9- Ernst Cassirer-An Essay on Man. P-20

10-Hector Hawton (Ed.) Reason in Action, P-58

11- पण्ड्या, डॉ. प्रणव, जीवन मूल्यों का यक्ष प्रष्न और उसका हल, अखण्ड ज्योति, वर्श–60, अंक–3, अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा, पृ.–30

12- ब्रह्मवर्चस, पं. श्रीराम षर्मा आचार्य, परिश्कृत व्यक्तित्व : एक सिद्धि एक उपलब्धि, युग निर्माण योजना, मथुरा, पृ.–25

13- फिलास्फर साइण्टिस्ट, पृ.–209

14- पण्ड्या, डॉ. प्रणव(द्वितीय संस्करण–1998),पं. श्रीराम षर्मा आचार्य, वाड्.मय, खण्ड–54, मनुश्य में देवत्व का उदय, अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा, पृ.–5.112

15- पाण्डेय, ईष्वर षरण(2021),अप्रैल, युग निर्माण योजना, घर–परिवार : व्यक्तित्व निर्माण की पाठषाला, वर्श–57, अंक–10, पृ.–18

16- श्रीमाली, डॉ. मंदाकिनी(प्रथम संस्करण–2001),प्रज्ञापुरूश का समग्र दर्षन, अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा, पृ.–9.6

17- पण्ड्या, डॉ. प्रणव(1998),जून, अखण्ड ज्योति, वर्श–61, अंक–06, पृ.–33

18- Dr.Maitra – Contemporary Indian Philosophy. P-386

19- पण्ड्या, डॉ. प्रणव(1994),मई, अखण्ड ज्योति, प्रज्ञायोग : एक युगानुकूल साधना प्रयोग, वर्श–57, अंक–05, पृ.–38

20- ब्रह्मवर्चस(2012),पं. श्रीराम षर्मा आचार्य, जीवन देवता की साधना–आराधना, वाड्.मय खण्ड–02, अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा, पृ.–3.8 से 3.15

21- ब्रह्मवर्चस(1998),पं. श्रीराम षर्मा आचार्य, पूज्यवर की अमृतवाणी, भाग–1, वाड्.मय खण्ड–68, अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा, पृ.–1.1

22- पण्ड्या, डॉ. प्रणव(2015),अगस्त, युग निर्माण योजना, आध्यात्मिक मूल्यांकन की कसौटी, वर्श–52, अंक–02, पृ.–25

23- पण्ड्या, डॉ. प्रणव(2009),जून, अखण्ड ज्योति, वर्श–73, अंक–06, पृ.–65